

स्वतंत्रता का उद्घोष

(स्वतंत्रता की घोषणा)

समयसार कलश २११ का मर्म

आध्यात्मिकसत्पुरुषश्री कानजीस्वामी के प्रवचन

संपादक :

ब्र. यशपाल जैन, एम.ए. जयपुर

प्रकाशक :

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए-४, बापूनगर, जयपुर (राजस्थान) ३०२०१५

फोन : (०१४१) २७०५५८१, २७०७४५८

फैक्स : २७०४१२७, E-mail : ptstjaipur@yahoo.com

प्रथम संस्करण

: २,०००

(१५ फरवरी, २०१३)

(बसंत पंचमी)

मूल्य :

चार रुपया

टाइपसैटिंग

त्रिमूर्ति कंप्यूटर्स

ए-४, बापूनगर

जयपुर

मुद्रक :

श्री प्रिन्टर्स

मालवीयनगर,

जयपुर

प्रकाशकीय

परमपूज्य प्रातःस्मरणीय आचार्यश्री कुन्दकुन्दकृत महान ग्रंथाधिराज समयसार ग्रंथ अद्वितीय है। उसीतरह ग्रंथाधिराज समयसार में सर्वविशुद्धज्ञानाधिकार भी सर्वोत्तम एवं अद्वितीय अधिकार है।

इस सर्वविशुद्धज्ञानाधिकार में भी वस्तु की स्वतंत्रता को बतानेवाला कलश क्रमांक २११ भी सर्वश्रेष्ठ है। इस कलश पर आध्यात्मिकसत्पुरुषश्री कानजीस्वामी के प्रवचन भी अद्वितीय ही हैं। श्री स्वामीजी के इन प्रवचनों को प्रकाशित करते समय हमें अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है।

श्री स्वामीजी के श्रीमुख से इस कलश का प्रवचन साक्षात् भी उनके जीवन काल में सोनगढ़ में मुझे सुनने का सौभाग्य मिला है। अतः इस कलश/श्लोक की मुझे विशेष महिमा है। योगानुयोग से श्री देवेन्द्रकुमार जैन बिजौलिया ने श्री कुन्दकुन्दकहान पारमार्थिक ट्रस्ट मुम्बई द्वारा जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तरमाला में भी इस कलश के प्रवचनों को प्रकाशित किया है। उसीप्रकार श्री केशवलालजी जैन सहारनपुरवालों ने भी अनेक वर्षों पूर्व स्वतंत्रता की घोषणा नाम से प्रकाशित किया था; जो इन दिनों में अनुपलब्ध है।

दोनों कृतियों को पढ़कर मुझे उन्हीं प्रवचनों को श्री टोडरमल दि. जैन महाविद्यालय के विद्यार्थी इन प्रवचनों को मुखोद्गन करेंगे तो अच्छा रहेगा। इस भावना से फिर से संपादित करके प्रकाशित करने का परिणाम हुआ। अतः इन प्रवचनों को ही 'स्वतंत्रता का उद्घोष' नाम से हम प्रकाशित कर रहे हैं।

मुमुक्षु समाज इसका स्वाध्याय करके आत्मानुभूति के लिए उपयोगी बनायेगा ही, ऐसा हमें विश्वास है। कम्पोज का कार्य श्री कैलाशचन्द्र शर्मा ने किया है। श्री अखिलजी बंसल ने हमेशा की भाँति प्रकाशन एवं आवरण आदि कार्य किया है। दातारों ने दान दिया है। अतः हम सबको हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

हृ. ब्र. यशपाल जैन, एम.ए.

प्रकाशन मंत्री - पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट,

स्वतंत्रता का उद्घोष

(चार बोलों से स्वतंत्रता की घोषणा करता हुआ विशेष प्रवचन)

समयसार-कलश २११

भगवान सर्वज्ञदेव का देखा हुआ वस्तु स्वभाव कैसा है, उसमें कर्ता-कर्मपना किस प्रकार है, वह अनेक प्रकार से दृष्टान्त और युक्तिपूर्वक पुनः पुनः समझाते हुये, उस स्वभाव के निर्णय में मोक्षमार्ग किस प्रकार आता है, वह आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी ने इन प्रवचनों में बतलाया है। इनमें पुनः पुनः भेदज्ञान कराया है और वीतरागमार्ग के रहस्यभूत स्वतंत्रता की घोषणा करते हुए कहा है कि - सर्वज्ञदेव द्वारा कहे हुए इस परम सत्य वीतराग-विज्ञान को जो समझेगा, उसका अपूर्व कल्याण होगा।

कर्ता-कर्म सम्बन्धी भेदज्ञान कराते हुए आचार्यश्री अमृतचन्द्र देव कलश काव्य में कहते हैं -

(नर्दटक छन्द)

ननु परिणाम एव किल कर्म विनिश्चयतः।

स भवति नापरस्य परिणामिन एव भवेत्॥

न भवति कर्तृशून्यमिह कर्म न चैकतया।

स्थितिरिह वस्तुनो भवतु कर्तृ तदेव ततः॥२११॥

अर्थात्, वास्तव में परिणाम ही निश्चय से कर्म है और परिणाम अपने आश्रयभूत परिणामी का ही होता है; अन्य का नहीं (क्योंकि परिणाम अपने-अपने द्रव्य के आश्रित हैं; अन्य के परिणाम का अन्य आश्रय नहीं होता) और कर्म, कर्ता के बिना नहीं होता तथा वस्तु की एकरूप (कूटस्थ) स्थिति नहीं होती (क्योंकि वस्तु द्रव्य-पर्यायस्वरूप होने से सर्वथा नित्यत्व, बाधासहित है); इसलिए वस्तु स्वयं ही अपने परिणामरूप कर्म की कर्ता है।

“वस्तु स्वयं अपने परिणाम की कर्ता है और अन्य के साथ उसका

कर्ता-कर्म का सम्बन्ध नहीं है” - इस सिद्धान्त को आचार्यदेव ने चार बोलों से स्पष्ट समझाया है -

(१) परिणाम अर्थात् पर्याय ही कर्म है - कार्य है।

(२) परिणाम अपने आश्रयभूत परिणामी के ही होते हैं, अन्य के नहीं होते। क्योंकि परिणाम अपने-अपने आश्रयभूत परिणामी (द्रव्य) के आश्रय से होते हैं। अन्य का परिणाम अन्य के आश्रय से नहीं होता।

(३) कर्ता के बिना कर्म नहीं होता अर्थात् परिणाम, वस्तु के बिना नहीं होता।

(४) वस्तु की निरन्तर एक समान स्थिति नहीं रहती; क्योंकि वस्तु द्रव्य-पर्याय स्वरूप है।

इसप्रकार आत्मा और जड़ - सभी वस्तुयें स्वयं ही अपने परिणाम-स्वरूप कर्म की कर्ता हैं - ऐसा वस्तु स्वरूप का महान सिद्धान्त आचार्यदेव ने समझाया है और उसी का यह प्रवचन है। इस प्रवचन में अनेक प्रकार से स्पष्टीकरण करते हुए गुरुदेव ने भेदज्ञान को पुनः पुनः समझाया है।

● ● ●
देखो! इसमें वस्तुस्वरूप को चार बोलों द्वारा समझाया है।

इस जगत में छह वस्तुयें/द्रव्य हैं - आत्मा अनन्त हैं, पुद्गल परमाणु अनन्तान्त हैं तथा धर्म, अधर्म, आकाश ये प्रत्येक एक-एक है और काल द्रव्य असंख्यात है - ऐसी छहों प्रकार की वस्तुयें और उनके स्वरूप का वास्तविक नियम क्या है? सिद्धान्त क्या है? उसे यहाँ चार बोलों में समझाया जा रहा है -

(१) परिणाम ही कर्म है -

प्रथम तो ‘ननु परिणाम एव किल कर्म विनिश्चयतः’ अर्थात् परिणामी वस्तु के जो परिणाम हैं; वही निश्चय से उसका कर्म है। कर्म अर्थात् कार्य। परिणाम अर्थात् अवस्था। पदार्थ की अवस्था ही वास्तव

में उसका कर्म/कार्य है। परिणामी अर्थात् अखण्ड वस्तु; वह जिस भाव से परिणामन करे, उसको परिणाम कहते हैं। परिणाम कहो, कार्य कहो, पर्याय कहो या कर्म कहो - ये सभी शब्द वस्तु के परिणाम के पर्यायवाची ही हैं।

जैसे कि - आत्मा ज्ञानगुणस्वरूप है; उसका परिणामन होने से जो जानने की पर्याय हुई वह उसका कर्म है, वह उसका वर्तमान कार्य है। राग या शरीर वह कोई ज्ञान का कार्य नहीं; परन्तु ‘यह राग है, यह शरीर है’, - ऐसा उन्हें जानने वाला जो ज्ञान है, वह आत्मा का कार्य है। आत्मा का परिणाम वह आत्मा का कार्य है और जड़ का परिणाम अर्थात् जड़ की अवस्था वह जड़ का कार्य है; - इसप्रकार एक बोल पूर्ण हुआ।

(२) परिणाम, वस्तु का ही होता है; दूसरे का नहीं -

अब, इस दूसरे बोल में कहते हैं कि - जो परिणाम होता है, वह परिणामी पदार्थ का ही होता है; वह परिणाम किसी अन्य के आश्रय से नहीं होता। जिसप्रकार श्रवण के समय जो ज्ञान होता है, वह कार्य है - कर्म है। यह ज्ञान, किसका कार्य है? यह ज्ञान, कहीं शब्दों का कार्य नहीं है; परन्तु परिणामी वस्तु जो आत्मा है, उसीका वह कार्य है। परिणामी के बिना परिणाम नहीं होता। आत्मा परिणामी है - उसके बिना ज्ञानरूप परिणाम नहीं होता - यह सिद्धान्त है।

वाणी के बिना ज्ञान नहीं होता - यह बात सच नहीं है। शब्दों के बिना ज्ञान नहीं होता - ऐसा नहीं; परन्तु आत्मा के बिना ज्ञान नहीं होता - ऐसा है। इसप्रकार परिणामी आत्मा के आश्रय से ही ज्ञानादि परिणाम हैं।

देखो! यह महा सिद्धान्त है, वस्तुस्वरूप का यह अबाधित नियम है।

परिणामी के आश्रय से ही उसके परिणाम होते हैं। जाननेवाला आत्मा, वह परिणामी है, उसके आश्रित ही ज्ञान होता है; वे ज्ञान-परिणाम, आत्मा के हैं; वाणी के नहीं है। वाणी के रजकणों के आश्रित

ज्ञान परिणाम नहीं होते; परन्तु ज्ञानस्वभावी आत्मवस्तु के आश्रय से वे परिणामन होते हैं। आत्मा त्रिकाल स्थित रहने वाला परिणामी है, वह स्वयं रूपान्तरित होकर नवीन-नवीन अवस्थाओं को धारण करता है। उसके ज्ञान-आनन्द इत्यादि जो वर्तमान भाव हैं, वे उसके परिणाम हैं।

‘परिणाम, परिणामी के ही हैं; अन्य के नहीं’ – इसमें जगत के सभी पदार्थों का नियम आ जाता है। परिणाम, परिणामी के ही आश्रित होते हैं, अन्य के आश्रित नहीं होते हैं। ज्ञान परिणाम, आत्मा के आश्रित हैं, भाषा आदि अन्य के आश्रित ज्ञान के परिणाम नहीं हैं। इसलिये इसमें पर की ओर देखना नहीं रहता; परन्तु अपनी वस्तु के सामने देखकर स्वसन्मुख परिणामन करना रहता है, उसमें मोक्षमार्ग आ जाता है।

वाणी तो अनन्त जड़ परमाणुओं की अवस्था है, वह अपने जड़ परमाणुओं के आश्रित हैं। बोलने की जो इच्छा हुई, उस इच्छा के आश्रित भाषा के परिणाम तीन काल में भी नहीं हैं। जब इच्छा हुई और भाषा निकली उस समय उसका जो ज्ञान हुआ, वह ज्ञान आत्मा के आश्रय से ही हुआ है। भाषा के आश्रय से तथा इच्छा के आश्रय से ज्ञान नहीं हुआ है।

‘परिणाम अपने आश्रयभूत परिणामी के आश्रय से ही होते हैं, अन्य के आश्रय से नहीं होते’; – इसप्रकार यहाँ अस्ति-नास्ति से अनेकान्त द्वारा वस्तुस्वरूप समझाया है। यह बात सत्य के सिद्धान्त की अर्थात् वस्तु के सत्स्वरूप की है। अज्ञानी इसको पहिचाने बिना मूढ़तापूर्वक अज्ञानता में ही जीवन पूर्ण कर डालता है। परन्तु भाई! आत्मा क्या है? जड़ क्या है? इनकी भिन्नता समझकर वस्तुस्वरूप के वास्तविक सत् को समझे बिना ज्ञान में सत्पना नहीं आता, अर्थात् सम्यग्ज्ञान नहीं होता।

वस्तुस्वरूप के सत्य ज्ञान के बिना सच्ची रुचि और श्रद्धा भी नहीं होती और सच्ची श्रद्धा के बिना वस्तु में स्थिरता रूप चारित्र प्रगट नहीं

होता, शान्ति नहीं होती, समाधान और सुख नहीं होता।

इसलिये वस्तुस्वरूप क्या है, उसे प्रथम समझना चाहिये। वस्तुस्वरूप को समझने से मेरे परिणाम, पर से और पर के परिणाम मुझसे होते हैं – ऐसी पराश्रित बुद्धि नहीं रहती अर्थात् स्वाश्रित-स्वसन्मुख परिणाम प्रगट होता है, यही धर्म है।

आत्मा को जो ज्ञान होता है; उसको जानने के परिणाम, आत्मा के आश्रित हैं, वे परिणाम वाणी के आश्रय से नहीं हुये हैं, कान के आश्रय से नहीं हुए हैं तथा उस समय की इच्छा के आश्रय से भी नहीं हुये हैं। यद्यपि इच्छा भी आत्मा के परिणाम हैं; परन्तु उन परिणामों के आश्रित ज्ञान परिणाम नहीं हैं। ज्ञान परिणाम, आत्मवस्तु के आश्रित है – इसलिये वस्तुसन्मुख दृष्टि कर।

बोलने की इच्छा हो, होंठ हिलें, भाषा निकले और उस समय उस प्रकार का ज्ञान हो – ऐसी चारों क्रियायें, एक साथ होते हुये भी कोई क्रिया किसी के आश्रित नहीं, सभी अपने-अपने परिणामी द्रव्य के ही आश्रित हैं।

इच्छा वह आत्मा के चारित्रगुण के परिणाम हैं, होंठ हिले वह होंठ के रजकणों की अवस्था है, वह अवस्था इच्छा के आधार से नहीं हुई।

भाषा प्रगट हो, वह भाषावर्गणा के रजकणों की अवस्था है, वह अवस्था इच्छा के आश्रित या होंठ के आश्रित नहीं हुई; परन्तु परिणामी ऐसे रजकणों के आश्रय से वह भाषा उत्पन्न हुई हैं। उस समय का ज्ञान, आत्मवस्तु के आश्रित है, इच्छा अथवा भाषा के आश्रित नहीं है – ऐसा वस्तुस्वरूप है।

भाई! तीन काल, तीन लोक में सर्वज्ञ भगवान का देखा हुआ यह वस्तुस्वभाव है; अज्ञानी उसे जाने बिना और समझने की परवाह बिना अन्धे की भाँति चला जाता है; परन्तु वस्तुस्वरूप के सच्चे ज्ञान के बिना किसी प्रकार कहीं भी कल्याण नहीं हो सकता। इस वस्तुस्वरूप को

बारम्बार लक्ष में लेकर परिणामों से भेदज्ञान करने के लिये यह बात है।

एक वस्तु के परिणाम अन्य वस्तु के आश्रित तो हैं नहीं; परन्तु उस वस्तु में भी उसके एक परिणाम के आश्रित, दूसरे परिणाम नहीं हैं। परिणामी वस्तु के आश्रित ही परिणाम हैं – यह महान सिद्धान्त है।

प्रतिक्षण इच्छा, भाषा और ज्ञान – ये तीनों एक साथ होते हुए भी इच्छा और ज्ञान जीव के आश्रित हैं और भाषा, वह जड़ के आश्रित हैं। इच्छा के कारण भाषा हुई और भाषा के कारण ज्ञान हुआ – ऐसा नहीं। उसीप्रकार इच्छा के आश्रित ज्ञान भी नहीं।

इच्छा और ज्ञान यह दोनों हैं तो आत्मा के परिणाम; तथापि एक के आश्रित दूसरे के परिणाम नहीं है। ज्ञान परिणाम और इच्छा परिणाम, दोनों भिन्न-भिन्न हैं। ज्ञान, वह इच्छा का कार्य नहीं है और इच्छा, वह ज्ञान का कार्य नहीं है। जहाँ ज्ञान का कार्य इच्छा भी नहीं, वहाँ जड़ भाषा आदि तो उसका कार्य कहाँ से हो सकता है? वह तो जड़ का कार्य है।

जगत में जो भी कार्य होते हैं। वे सत् की अवस्थाएँ होती हैं; किसी वस्तु के परिणाम होते हैं; परन्तु वस्तु के बिना अधर से परिणाम नहीं होते। परिणामी का परिणाम होता है। नित्य स्थित वस्तु के आश्रित परिणाम होते हैं, पर के आश्रित नहीं होते।

परमाणु में होंठों का हिलना और भाषा का परिणामन – यह दोनों भी भिन्न वस्तुएँ हैं। आत्मा में इच्छा और ज्ञान – ये दोनों परिणाम भी भिन्न-भिन्न है।

होंठ हिलने के आश्रित भाषा की पर्याय नहीं है। होंठ का हिलना वह होंठ के पुद्गलों के आश्रित है। भाषा का परिणामन वह भाषा के पुद्गलों के आश्रित है।

होंठ और भाषा, इच्छा और ज्ञान – इन चारों का काल एक होने पर भी चारों परिणाम अलग हैं।

उसमें भी इच्छा और ज्ञान – यह दोनों परिणाम आत्माश्रित होने पर भी इच्छारूप परिणाम के आश्रित ज्ञानरूप परिणाम नहीं हैं। ज्ञान, वह आत्मा का परिणाम है, इच्छा का नहीं; इसी प्रकार इच्छा, वह आत्मा का परिणाम है, ज्ञान का नहीं। इच्छा को जानने वाला ज्ञान वह इच्छा का कार्य नहीं है। उसी प्रकार वह ज्ञान, इच्छा को उत्पन्न भी नहीं करता। इच्छारूप परिणाम आत्मा का कार्य अवश्य है, परन्तु ज्ञान का कार्य नहीं है। भिन्न-भिन्न गुण के परिणाम भिन्न-भिन्न हैं, एक ही द्रव्य में होने पर भी एक गुण के आश्रित दूसरे गुण के परिणाम नहीं हैं।

कितनी स्वतंत्रता!! और इसमें पर के आश्रय की तो बात ही कहाँ रही?

आत्मा में चारित्रगुण इत्यादि अनन्त गुण हैं। उनमें चारित्र का विकृत परिणाम सो इच्छा है। वह चारित्रगुण के आश्रित है और उस समय इच्छा का ज्ञान हुआ, वह ज्ञानगुण रूप परिणामी के परिणाम हैं, वह कहीं इच्छा के परिणाम के आश्रित नहीं हैं। इसप्रकार इच्छा परिणाम और ज्ञान परिणाम इन दोनों का भिन्न-भिन्न परिणामन है, दोनों एक-दूसरे के आश्रित नहीं हैं।

भाई! सत् जैसा है, उसी प्रकार उसका ज्ञान करे तो सत् का ज्ञान हो और सत् का ज्ञान करे तो उसका बहुमान एवं यथार्थ का आदर प्रगट हो, रुचि हो, श्रद्धा दृढ़ हो और उसमें स्थिरता हो, उसे ही धर्म कहा जाता है। सत् से विपरीत ज्ञान करे उसे धर्म नहीं होता। स्व में स्थिरता ही मूलधर्म है; परन्तु वस्तुस्वरूप के सच्चे ज्ञान बिना स्थिरता कहाँ करेगा?

आत्मा और शरीरादि रजकण भिन्न-भिन्न तत्त्व हैं। शरीर की अवस्था, हलन-चलन, बोलना – यह सब परिणामी पुद्गलों का परिणाम है, उन पुद्गलों के आश्रित वे परिणाम उत्पन्न हुये हैं, इच्छा के आश्रित नहीं।

उसी प्रकार इच्छा के आश्रित ज्ञान भी नहीं है। पुद्गल के परिणाम आत्मा के आश्रित मानना और आत्मा के परिणाम पुद्गलाश्रित मानना – इसमें तो विपरीत मान्यतारूप मूढ़ता है।

जगत में भी जो वस्तु जैसी हो, उससे विपरीत बतलानेवाले को लोग मूर्ख कहते हैं, तो फिर सर्वज्ञ कथित यह लोकोत्तर वस्तु-स्वभाव, जैसा है वैसा न मानकर विरुद्ध मानें तो लोकोत्तर मूर्ख और अविवेकी ही है।

विवेकी और विलक्षण कब कहा जाय? वस्तु के जो परिणाम हुये, उसे कार्य मानकर, उसे परिणामी-वस्तु के आश्रित समझे और दूसरे के आश्रित न माने, तब स्व-पर का भेदज्ञान होता है और तभी विवेकी है - ऐसा कहने में आता है।

आत्मा के परिणाम पर के आश्रय से नहीं होते। विकारी और अविकारी जो भी परिणाम, जिस वस्तु के हैं, वे उसी वस्तु के आश्रित हैं, अन्य के आश्रित नहीं।

पदार्थ का परिणाम, वही उसका कार्य है - यह एक बात। दूसरी बात यह कि वे परिणाम उसी वस्तु के आश्रय से होते हैं, अन्य के आश्रय से नहीं होते - यह नियम जगत के समस्त पदार्थों में लागू होता है।

देखो भाई! यह तो भेदज्ञान के लिए वस्तु स्वभाव के नियम बतलाये गये हैं। अब, धीरे-धीरे दृष्टान्त से, युक्ति से वस्तु-स्वरूप सिद्ध किया जाता है।

देखो! किसी को ऐसा भाव उत्पन्न हुआ कि सौ रुपये दान में दूँ, उसका वह परिणाम आत्मवस्तु के आश्रित हुआ है। वहाँ रुपये जाने की जो क्रिया होती है वह रुपये के रजकणों के आश्रित हैं, जीव की इच्छा के आश्रित नहीं। अब, उस समय उन रुपये की क्रिया का ज्ञान, अथवा इच्छा के भाव का ज्ञान होता है, वह ज्ञान परिणाम आत्माश्रित हुआ है - इसप्रकार परिणामों का विभाजन करके वस्तु स्वरूप का ज्ञान करना चाहिये।

भाई! तेरा ज्ञान और तेरी इच्छा - ये दोनों परिणाम आत्मा में होते हुये भी जब वे एक दूसरे के आश्रित नहीं हैं; तो फिर पर के आश्रय की तो बात ही कहाँ रही? दान की इच्छा हुई और रुपये दिये गये, वहाँ रुपये के जाने की क्रिया भी हाथ के आश्रित नहीं, हाथ का हिलना

इच्छा के आश्रित नहीं, और इच्छा का परिणाम वह ज्ञान के आश्रित नहीं है; सभी अपने-अपने आश्रयभूत वस्तु के आधार से है।

देखो! यह सर्वज्ञ के विज्ञान का पाठ है; ऐसा वस्तु-स्वरूप का ज्ञान, सच्चा पदार्थविज्ञान है। जगत के पदार्थों का स्वभाव ही ऐसा है कि वे सदा एकरूप नहीं रहते; परन्तु परिणामन करके नवीन-नवीन अवस्थारूप कार्य किया करते हैं - यह बात चौथे बोल में कही जायेगी।

जगत के पदार्थों का स्वभाव ऐसा है कि वे नित्य स्थायी रहे और उनमें प्रतिक्षण नवीन-नवीन अवस्थारूप कार्य, उनके अपने ही आश्रित हुआ करे - वस्तु-स्वभाव का ऐसा ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है।

(१) जीव को इच्छा हुई, इसलिये हाथ हिला और सौ रुपये दिये गये - ऐसा नहीं है। (२) इच्छा का आधार आत्मा है, हाथ और रुपयों का आधार परमाणु है। (३) रुपये जाने थे, इसलिये इच्छा हुई ऐसा भी नहीं है। (४) हाथ का हलन-चलन, वह हाथ के परमाणुओं के आधार से है। (५) रुपयों का आना-जाना, वह रुपयों के परमाणुओं के आधार से है। (६) इच्छा का होना, वह आत्मा के चारित्रगुण के आधार से है।

यह तो भिन्न-भिन्न द्रव्य के परिणाम की भिन्नता की बात हुई; यहाँ तो उससे भी आगे अन्दर की बात लेना है। एक ही द्रव्य के अनेक परिणाम भी एक-दूसरे के आश्रित नहीं हैं - ऐसा बतलाना है। राग और ज्ञान दोनों के कार्य भिन्न हैं, एक-दूसरे के आश्रित नहीं हैं।

किसी ने गाली दी और जीव को द्वेष के पाप-परिणाम हुये, वहाँ वे पाप के परिणाम प्रतिकूलता के कारण नहीं हुये और गाली देने वाले के आश्रित भी नहीं हुये; परन्तु चारित्रगुण के आश्रित हुये हैं। चारित्रगुण ने उस समय उस परिणाम के अनुसार परिणामन किया है; अन्य तो निमित्त मात्र हैं।

अब, द्वेष के समय, उसका ज्ञान हुआ कि 'मुझे यह द्वेष हुआ' - यह ज्ञान परिणाम, ज्ञानगुण के आश्रित है; क्रोध के आश्रित नहीं है।

ज्ञानस्वभावीद्रव्य के आश्रित ज्ञानपरिणाम होते हैं; अन्य के आश्रित नहीं होते। इसीप्रकार सम्यग्दर्शन परिणाम, सम्यग्ज्ञान परिणाम, आनन्द परिणाम इत्यादि में भी ऐसा ही समझना। यह ज्ञानादि परिणाम, द्रव्य के आश्रित हैं; अन्य के आश्रित नहीं है तथा परस्पर एक-दूसरे के आश्रित भी नहीं है।

गाली के शब्द का अथवा द्वेष के समय द्वेष का ज्ञान हुआ, वह ज्ञान, शब्दों के आश्रित नहीं है और क्रोध के आश्रित भी नहीं है, उसका आधार तो ज्ञानस्वभावी वस्तु है। इसलिए उसके ऊपर दृष्टि लगा दो तो तेरी पर्याय में मोक्षमार्ग प्रगट हो जायेगा। इस मोक्षमार्गरूपी ज्ञान कार्य का कर्ता भी तू ही है, अन्य कोई नहीं।

अहो! यह तो सुगम और स्पष्ट बात है। लौकिक पढ़ाई अधिक न की हो; तथापि यह समझ में आ जाये, ऐसा है। जरा अन्दर में उतर कर लक्ष में लेना चाहिये कि आत्मा अस्तिरूप है, उसमें ज्ञान है, आनन्द है, श्रद्धा है, अस्तित्व है – इसप्रकार अनन्त गुण हैं। इन अनन्त गुणों के भिन्न-भिन्न अनन्त परिणाम, प्रति समय होते हैं; उन सभी का आधार परिणामी ऐसा आत्मद्रव्य है, अन्य वस्तु तो उसका आधार नहीं है; परन्तु अपने में दूसरे गुणों के परिणाम भी उनका आधार नहीं हैं।

जैसे कि श्रद्धापरिणाम का आधार ज्ञानपरिणाम नहीं है और ज्ञानपरिणाम का आधार श्रद्धा परिणाम नहीं है; दोनों परिणामों का आधार आत्मा ही है। उसीप्रकार सर्व गुणों के परिणामों के लिये समझना। इसप्रकार परिणाम, परिणामी का ही है, अन्य का नहीं।

इस २११वें कलश में आचार्यदेव द्वारा कहे गये वस्तुस्वरूप के चार बोलों में से अभी दूसरे बोल का विवेचन चल रहा है। प्रथम तो कहा है कि 'परिणाम एव किल कर्म' और फिर कहा कि 'स भवति परिणामिन एव, न अपरस्य भवेत्' परिणाम ही कर्म है और वह परिणामी का ही होता है, अन्य का नहीं – ऐसा निर्णय करके स्वद्रव्य-सन्मुख लक्ष जाने से सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान प्रगट होता है।

सम्यग्ज्ञान व सम्यग्दर्शन परिणाम हुआ, वह आत्मा का कर्म है। वह आत्मारूप परिणामी के आधार से हुआ है। पूर्व के मन्दराग के आश्रय से अथवा वर्तमान में शुभराग के आश्रय से वह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान के परिणाम नहीं होते। यद्यपि राग भी है तो आत्मा का परिणाम; परन्तु श्रद्धा-परिणाम से राग परिणाम अन्य हैं, वह श्रद्धा का परिणाम राग के आश्रित नहीं हैं; क्योंकि परिणाम परिणामी के ही आश्रय से होते हैं, अन्य के आश्रय से नहीं होते।

उसीप्रकार चारित्र परिणाम में – आत्मस्वरूप में स्थिरता, वह चारित्र का कार्य है; यह कार्य, श्रद्धा परिणाम के आश्रित नहीं है, ज्ञान परिणाम के आश्रित नहीं, परन्तु चारित्रगुण को धारण करने वाले आत्मा के ही आश्रित है। शरीरादि के आश्रय से चारित्र परिणाम नहीं है।

- (१) श्रद्धा का परिणाम, आत्मद्रव्य के आश्रित है,
- (२) ज्ञान का परिणाम, आत्मद्रव्य के आश्रित है;
- (३) स्थिरता का परिणाम आत्मद्रव्य के आश्रित है;
- (४) आनन्द का परिणाम, आत्मद्रव्य के आश्रित है।

बस, मोक्षमार्ग के सभी परिणाम स्व द्रव्याश्रित हैं, अन्य के आश्रित नहीं हैं। उस समय अन्य (रागादि) परिणाम होते हैं, उनके आश्रित भी यह परिणाम नहीं है। एक समय में श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र इत्यादि अनन्त गुणों के परिणाम होते हैं; वे कर्म है। उनका आधार धर्मी अर्थात् परिणमित होने वाली वस्तु है; उस समय अन्य जो अनेक परिणाम होते हैं, उनके आधार से श्रद्धा इत्यादि के परिणाम नहीं हैं। निमित्तादि के आधार से तो नहीं हैं; परन्तु अपने दूसरे परिणाम के आधार से भी कोई परिणाम नहीं है।

एक ही द्रव्य में एक साथ होने वाले परिणामों में भी एक परिणाम दूसरे परिणाम के आश्रित नहीं है; द्रव्य के ही आश्रित सभी परिणाम हैं। सभी परिणामरूप से परिणामन करने वाला द्रव्य ही है – अर्थात् द्रव्य सन्मुख लक्ष जाते ही सम्यक् पर्यायें प्रगट होने लगती हैं।

वाह! देखो! आचार्यदेव की शैली, थोड़े में बहुत समा देने की अद्भुत शैली है। चार बोलों के इस महान सिद्धान्त में वस्तुस्वरूप के बहुत से नियमों का समावेश हो जाता है। यह त्रिकाल सत्य सर्वज्ञ द्वारा निश्चित किया हुआ सिद्धान्त है। अहो! यह परिणामी के परिणाम की स्वाधीनता, सर्वज्ञदेव द्वारा कहा हुआ वस्तुस्वरूप का तत्त्व है। सन्तों ने इसका विस्तार करके आश्चर्यकारी कार्य किया है।

पदार्थ का पृथक्करण करके भेदज्ञान कराया है। अन्दर में इसका मन्थन करके देख तो मालूम हो कि अनन्त सर्वज्ञों तथा सन्तों ने ऐसा ही वस्तु-स्वरूप कहा है और ऐसा ही वस्तु का स्वरूप है।

सर्वज्ञ भगवन्त, दिव्यध्वनि द्वारा ऐसा तत्त्व कहते आये हैं - ऐसा व्यवहार से कहा जाता है; किन्तु वस्तुतः दिव्यध्वनि तो परमाणुओं के आश्रित है।

कोई कहे कि अरे क्या दिव्यध्वनि भी परमाणु-आश्रित है? हाँ, दिव्यध्वनि वह पुद्गल का परिणाम है और पुद्गल परिणाम का आधार तो पुद्गल द्रव्य ही होता है; जीव उसका आधार नहीं हो सकता।

भगवान का आत्मा तो अपने केवलज्ञानादि का आधार है। भगवान का आत्मा तो केवलज्ञान-दर्शन-सुख इत्यादि निज परिणामरूप परिणामन करता है; परन्तु कहीं देह और वाणीरूप अवस्था धारण करके परिणमित नहीं होता, उस रूप तो पुद्गल ही परिणमित होता है। परिणाम, परिणामी के ही होते हैं; अन्य के नहीं।

भगवान की सर्वज्ञता के आधार से दिव्यध्वनि के परिणाम हुए - ऐसा वस्तुस्वरूप नहीं है। भाषारूप परिणाम, अनन्त पुद्गलाश्रित है और सर्वज्ञता आदि परिणाम जीवाश्रित है - इसप्रकार दोनों की भिन्नता है। कोई किसी का कर्ता या आधार नहीं है।

देखो! यह भगवान आत्मा की अपनी बात है। समझ में नहीं आयेगी, ऐसा नहीं मानना। अन्दर लक्ष करे तो समझ में आये - ऐसी सरल है।

देखो! लक्ष में लो! कि अन्दर कोई वस्तु है या नहीं? और यह जो जानने के या रागादि के भाव होते हैं इन भावों का कर्ता कौन है? आत्मा स्वयं उनका कर्ता है। - इसप्रकार आत्मा को लक्ष में लेने के लिए दूसरी पढ़ाई की कहाँ आवश्यकता है? यह अज्ञानी जीव दुनियाँ की बेगार/ मजदूरी करके दुःखी होता है, उसके बदले यदि वस्तुस्वभाव को समझे तो कल्याण हो जाये। अरे जीव! ऐसे सुन्दर न्याय द्वारा सन्तों ने वस्तुस्वरूप समझाया है, उसे तू समझ।

वस्तुस्वरूप के दो बोल हुए। अब तीसरा बोल :-

(३) कर्ता के बिना कर्म नहीं होता -

कर्ता अर्थात् परिणमित होने वाली वस्तु और कर्म अर्थात् उसकी अवस्था रूप कार्य। कर्ता के बिना कर्म नहीं होता; अर्थात् वस्तु के बिना पर्याय नहीं होती। सर्वथा शून्य में से कोई कार्य उत्पन्न हो जाये; ऐसा नहीं होता।

देखो! यह वस्तु-विज्ञान का महान सिद्धान्त है; इस २११वें कलश में चार बोलों द्वारा चारों पक्षों से स्वतंत्रता सिद्ध की है।

विदेशों में अज्ञान की पढ़ाई के पीछे हैरान होते हैं, उसकी अपेक्षा सर्वज्ञदेव कथित इस परम सत्य वीतरागी विज्ञान को समझे तो अपूर्व कल्याण हो।

(१) परिणाम सो कर्म; यह एक बात। (२) वह परिणाम किसका? - कि परिणामी वस्तु का परिणाम है, दूसरे का नहीं। यह दूसरा बोल; इसका बहुत विस्तार किया है।

अब यहाँ इस तीसरे बोल में कहते हैं कि - परिणामी के बिना परिणाम नहीं होता। परिणामी वस्तु से भिन्न अन्यत्र कहीं परिणाम हो, ऐसा नहीं होता। परिणामी वस्तु में ही उसके परिणाम होते हैं। इसलिए परिणामी वस्तु, वह कर्ता है; उसके बिना कार्य नहीं होता।

(४)

देखो! इसमें निमित्त के बिना नहीं होता - ऐसा नहीं कहा। निमित्त-

निमित्त में रहता है, वह, कहीं इस कार्य में नहीं आ जाता। इसलिये निमित्त के बिना कार्य होता है; परन्तु परिणामी के बिना कार्य नहीं होता। निमित्त भले हो; परन्तु उसका अस्तित्व तो निमित्त में है, इसमें (कार्य में) उसका अस्तित्व नहीं है। परिणामी वस्तु की सत्ता में ही उसका कार्य होता है। आत्मा के बिना सम्यक्त्वादि परिणाम नहीं होते। अपने समस्त परिणामों का कर्ता आत्मा है, उसके बिना कर्म नहीं होता। “कर्तृशून्यं कर्म न भवति” – प्रत्येक पदार्थ की अवस्था उस-उस पदार्थ के बिना नहीं होती।

सोना नहीं है और गहने बन गये, वस्तु नहीं है और अवस्था हो गई – ऐसा नहीं हो सकता। अवस्था है, वह त्रैकालिक वस्तु को प्रगट करती है – प्रसिद्ध करती है कि यह अवस्था इस वस्तु की है।

जैसे कि – पुद्गल जड़ कर्मरूप होते हैं, वे कर्म परिणाम, कर्ता के बिना नहीं होते। अब उनका कर्ता कौन? – तो कहते हैं कि – उस पुद्गल कर्मरूप परिणामित होने वाले रजकण ही कर्ता है; आत्मा उनका कर्ता नहीं है।

(अ) आत्मा, कर्ता होकर जड़ कर्म का बन्ध करे – ऐसा वस्तुस्वरूप में नहीं है।

(आ) जड़कर्म, आत्मा को विकार कराये – ऐसा वस्तु स्वरूप में नहीं है।

(इ) मन्द कषाय के परिणाम, सम्यक्त्व का आधार हों – ऐसा वस्तुस्वरूप में नहीं है।

(ई) शुभराग से क्षायिक सम्यक्त्व हो – ऐसा वस्तु रूप में नहीं है। तथापि अज्ञानी ऐसा मानता है – यह सब तो विपरीत है – अन्याय है।

भाई! तेरा यह अन्याय वस्तुस्वरूप को सहन नहीं होंगे। वस्तुस्वरूप को विपरीत मानने से तेरे आत्मा को बहुत दुःख होगा – ऐसी करुणा सन्तों को आती है। सन्त नहीं चाहते कि कोई जीव दुःखी हो। जगत के सारे जीव सत्य स्वरूप को समझे और दुःख से छूटकर सुख प्राप्त करें – ऐसी उनकी भावना है।

भाई! तेरे सम्यग्दर्शन का आधार तेरा आत्मद्रव्य है। शुभ-राग कहीं उसका आधार नहीं है। मन्दराग, वह कर्ता और सम्यग्दर्शन उसका कार्य – ऐसा त्रिकाल में नहीं है। वस्तु का जो स्वरूप है, वह तीन काल में आगे पीछे नहीं हो सकता। कोई जीव, अज्ञान से उसे विपरीत माने उससे कहीं सत्य बदल नहीं जाता।

कोई समझे या न समझे, सत्य तो सदा सत्यरूप ही रहेगा, वह कभी बदलेगा नहीं। जो उसे यथावत् समझेंगे वे अपना कल्याण कर लेंगे और जो नहीं समझेंगे उनकी तो बात ही क्या? वे तो संसार में भटक ही रहे हैं।

देखो! वाणी सुनी, इसलिये ज्ञान होता है न? परन्तु सोनगढ़ वाले इन्कार करते हैं कि ‘वाणी के आधार से ज्ञान नहीं होता’, – ऐसा कह कर कुछ लोग कटाक्ष करते हैं; लेकिन भाई! यह तो वस्तुस्वरूप है।

त्रिलोकीनाथ सर्वज्ञ परमात्मा भी दिव्यध्वनि में यही कहते हैं कि – ज्ञान, आत्मा के आश्रय से होता है; ज्ञान, वह आत्मा का कार्य है, दिव्यध्वनि के परमाणु का वह कार्य नहीं है।

ज्ञानरूप कार्य का कर्ता, आत्मा है; न कि वाणी के रजकण। जिस पदार्थ के जिस गुण का जो वर्तमान हो, वह अन्य पदार्थ के या अन्य गुण के आश्रय से नहीं होता। फिर उसका कर्ता कौन? कहते हैं कि वस्तु स्वयं। कर्ता और उसका कार्य दोनों – एक ही वस्तु में होने का नियम है – वे भिन्न वस्तु में नहीं होते।

यह लकड़ी ऊपर उठी, वह कार्य है; यह किसका कार्य है? – कर्ता का कार्य; कर्ता के बिना कार्य नहीं होता। कर्ता कौन है? – लकड़ी के रजकण ही लकड़ी की इस अवस्था के कर्ता हैं; यह हाथ, अंगुली या इच्छा, उसके कर्ता नहीं हैं।

अब अन्दर का सूक्ष्म दृष्टांत लें – किसी आत्मा में इच्छा और सम्यग्ज्ञान दोनों परिणाम वर्तते हैं; वहाँ इच्छा के आधार से सम्यग्ज्ञान

नहीं है। इच्छा, सम्यग्ज्ञान की कर्ता नहीं है। आत्मा ही कर्ता होकर उस कार्य को करता है। कर्ता के बिना कर्म नहीं है और दूसरा कोई कर्ता नहीं है; इसलिये जीव कर्ता द्वारा ज्ञानरूप कार्य होता है। इसप्रकार समस्त पदार्थों के सर्व कार्यों में सर्व पदार्थ का कर्तापना है - ऐसा समझना चाहिए।

देखो भाई! यह तो सर्वज्ञ भगवान के घर की बात है; इसे सुनकर सन्तुष्ट होना चाहिए। अहा! सन्तों ने वस्तु-स्वरूप समझाकर मार्ग स्पष्ट कर दिया है। सन्तों ने सारा मार्ग सरल और सुगम बना दिया है, उसमें बीच में कहीं अटकना पड़े ऐसा नहीं है। पर से भिन्न ऐसा स्पष्ट वस्तुस्वरूप समझे तो मोक्ष हो जाये। बाहर से तथा अन्दर से ऐसा भेदज्ञान समझने पर मोक्ष हथेली में आ जाता है। मैं तो पर से पृथक् हूँ और मुझमें एक गुण का कार्य दूसरे गुण से नहीं है - यह महान सिद्धान्त समझने पर स्वाश्रय भाव से अपूर्व कल्याण प्रगट होता है।

कर्म, अपने कर्ता के बिना नहीं होता - यह बात तीसरे बोल में कहीं; और चौथे बोल में कर्ता की (-वस्तु की) स्थिति एकरूप अर्थात् सदा एक-समान नहीं होती; परन्तु वह नये-नये परिणामों रूप से बदलती रहती है - यह बात कहेंगे। हर बार प्रवचन में इस चौथे बोल का विशेष विस्तार होता है; इस बार दूसरे बोल का विशेष विस्तार आया है।

कर्ता के बिना कार्य नहीं होता, यह सिद्धान्त है। यहाँ कोई कहे कि यह जगत कार्य है और ईश्वर उसका कर्ता है, तो यह बात वस्तुस्वरूप की नहीं है। प्रत्येक वस्तु, स्वयं ही अपनी पर्याय का ईश्वर है और वही कर्ता है, उससे भिन्न दूसरा कोई ईश्वर या अन्य कोई पदार्थ कर्ता नहीं है। पर्याय वह कार्य और पदार्थ उसका कर्ता।

कर्ता के बिना कार्य नहीं और दूसरा कोई कर्ता नहीं। -

कोई भी अवस्था हो - शुद्ध अवस्था, विकारी अवस्था या जड़ अवस्था, उसका कर्ता न हो - ऐसा नहीं होता तथा दूसरा कोई कर्ता हो - ऐसा भी नहीं, होता।

प्रश्न - तो क्या भगवान उसके कर्ता है?

उत्तर - हाँ, भगवान कर्ता अवश्य हैं; परन्तु कौन भगवान? अन्य कोई भगवान नहीं; परन्तु यह आत्मा स्वयं अपना भगवान है, वह कर्ता होकर अपने शुद्ध-अशुद्ध परिणामों का करता है। जड़ के परिणाम को जड़ पदार्थ करता है; वह अपना भगवान है।

प्रत्येक वस्तु अपनी-अपनी अवस्था का रचयिता ईश्वर है। प्रत्येक पदार्थ अपना स्व का स्वामी है, उसे पर का स्वामी मानना मिथ्यात्व है।

संयोग के बिना अवस्था नहीं होती - ऐसा नहीं है; परन्तु वस्तु परिणामित हुए बिना अवस्था नहीं होती - ऐसा सिद्धान्त है।

पर्याय के कर्तृव्य का अधिकार वस्तु का अपना है, उसमें पर का अधिकार नहीं है। इच्छारूपी कार्य हुआ, उसका कर्ता आत्मद्रव्य है। उस समय उसका ज्ञान हुआ, उस ज्ञान का कर्ता आत्मद्रव्य है।

पूर्व पर्याय में तीव्र राग था, इसलिये वर्तमान में राग हुआ, इसप्रकार पूर्व पर्याय में इस पर्याय का कर्तापना नहीं है। वर्तमान में आत्मा वैसे भावरूप परिणामित होकर स्वयं कर्ता हुआ है। इसीप्रकार ज्ञानपरिणाम, श्रद्धापरिणाम, आनन्दपरिणाम-उन सबका कर्ता आत्मा है, पर कर्ता नहीं। पूर्व के परिणाम भी कर्ता नहीं तथा वर्तमान में उसके साथ वर्तते हुए अन्य परिणाम भी कर्ता नहीं हैं - आत्मद्रव्य स्वयं कर्ता है।

शास्त्र में पूर्व पर्याय को कभी-कभी उपादान कहते हैं, वह तो पूर्व-पश्चात् की संधि बतलाने के लिए कहा है; परन्तु पर्याय का कर्ता तो उस समय वर्तता हुआ द्रव्य है, वही परिणामी होकर कार्यरूप परिणामित हुआ है।

जिस समय सम्यग्दर्शन पर्याय हुई; उस समय उसका कर्ता आत्मा ही है। पूर्व की इच्छा, वीतराग की वाणी या शास्त्र - वे कोई वास्तव में इस सम्यग्दर्शन के कर्ता नहीं है।

उसीप्रकार ज्ञान कार्य का कर्ता भी आत्मा ही है। इच्छा का ज्ञान हुआ, वहाँ वह ज्ञान, कहीं इच्छा का कार्य नहीं है और वह इच्छा, ज्ञान का कार्य नहीं है। दोनों परिणाम एक ही वस्तु के होने पर भी उनमें कर्ता-कर्मपना नहीं है, कर्ता तो परिणामी वस्तु है।

पुद्गल में खट्टी-खारी अवस्था थी और ज्ञान ने तदनुसार जाना; वहाँ खट्टी-खारी तो पुद्गल के परिणाम है और पुद्गल, उनका कर्ता है; तत्सम्बन्धी जो ज्ञान हुआ उसका कर्ता आत्मा है; उस ज्ञान का कर्ता वह खट्टी-खारी अवस्था नहीं है।

अहो! कितनी स्वतंत्रता!!

उसी प्रकार शरीर में रोगादि जो कार्य हो, उसके कर्ता वे पुद्गल हैं, आत्मा नहीं और उस शरीर की अवस्था का जो ज्ञान हुआ, उसका कर्ता आत्मा है।

आत्मा, कर्ता होकर ज्ञान परिणाम को करता है; परन्तु शरीर की अवस्था को वह नहीं करता। भाई! यह तो परमेश्वर होने के लिए परमेश्वर के घर की बात है। परमेश्वर सर्वज्ञदेव कथित यह वस्तुस्वरूप है।

जगत में चेतन या जड़ अनन्त पदार्थ, अनन्तरूप से नित्य रह कर अपने वर्तमान कार्य को करते हैं। प्रत्येक परमाणु में स्पर्श-रंग आदि अनन्तगुण; स्पर्श की चिकनी आदि अवस्था; रंग की काली आदि अवस्था, उस उस अवस्था का कर्ता परमाणुद्रव्य है; चिकनी अवस्था वह काली अवस्था का कर्ता नहीं है।

इसप्रकार आत्मा में - प्रत्येक आत्मा में अनन्तगुण हैं; ज्ञान में केवलज्ञान पर्यायरूप कार्य हुआ, आनन्द-पूर्ण आनन्द प्रगट हुआ, उसका कर्ता आत्मा स्वयं है। मनुष्य का शरीर अथवा स्वस्थ शरीर के कारण वह कार्य हुआ, ऐसा नहीं है।

पूर्व की मोक्षमार्ग की पर्याय के आधार से वह कार्य हुआ - ऐसा भी नहीं है; ज्ञान और आनन्द के परिणाम भी एक-दूसरे के आश्रित नहीं हैं;

द्रव्य ही परिणामित होकर उस कार्य का कर्ता हुआ है। भगवान आत्मा, स्वयं ही अपने केवलज्ञानादि कार्य का कर्ता है, अन्य कोई नहीं। - यह तीसरा बोल हुआ।

(४) वस्तु की स्थिति सदा एकरूप (-कूटस्थ) नहीं रहती -

सर्वज्ञदेव द्वारा देखा हुआ वस्तु का स्वरूप ऐसा है कि वह नित्य अवस्थित रहकर प्रतिक्षण नवीन अवस्थारूप परिणामित होता रहता है।

पर्याय बदले बिना ज्यों का त्यों कूटस्थ ही रहे - ऐसा वस्तु का स्वरूप नहीं है। वस्तु, द्रव्य-पर्याय स्वरूप है, इसलिये उसमें सर्वथा अकेला नित्यपना नहीं है, पर्याय से परिवर्तनपना भी है। वस्तु, स्वयं ही अपनी पर्यायरूप से पलटती है, कोई दूसरा उसे परिवर्तित करे - ऐसा नहीं है। नयी-नयी पर्यायरूप होना, वह वस्तु का अपना स्वभाव है, तो कोई उसका क्या करेगा?

इन संयोगों के कारण, यह पर्याय हुई, - इसप्रकार संयोग के कारण जो पर्याय मानता है, उसने वस्तु के परिणामनस्वभाव को नहीं जाना है, दो द्रव्यों को एक माना है।

भाई! तू संयोग से न देख, वस्तुस्वभाव को देख। वस्तुस्वभाव ही ऐसा है - वह नित्य एकरूप न रहे। द्रव्यरूप से एकरूप रहे; परन्तु पर्यायरूप से एकरूप न रहे, पलटता ही रहे - ऐसा वस्तुस्वरूप है। इन चार बोलों से ऐसा समझाया है कि वस्तु स्वयं ही अपने परिणामरूप कार्य की कर्ता है - यह निश्चित सिद्धान्त है।

इस पुस्तक का पृष्ठ पहले ऐसा था और फिर पलट गया; वहाँ हाथ लगने से पलटा हो, ऐसा नहीं है; परन्तु उन पृष्ठों के रजकणों में ही ऐसा स्वभाव है कि सदा एकरूप उनकी स्थिति न रहे; उनकी अवस्था बदलती रहती है; इसलिये वे स्वयं पहली अवस्था छोड़कर दूसरी अवस्थारूप हुये हैं, दूसरे के कारण नहीं। वस्तु में भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ होती ही रहती हैं;

वहाँ संयोग के कारण वह भिन्न अवस्था हुई - ऐसा अज्ञानी का भ्रम है; क्योंकि वह संयोग को ही देखता है; परन्तु वस्तुस्वभाव को नहीं देखता।

वस्तु, स्वयं परिणामनस्वभावी है, इसलिये वह एक ही पर्यायरूप नहीं रहती; - ऐसे स्वभाव को जाने तो किसी संयोग से अपने में या अपने से पर में परिवर्तन होने की बुद्धि छूट जाये और स्वद्रव्य की ओर देखना रहे, इसलिए मोक्षमार्ग प्रगट हो।

पानी पहले ठण्डा था और चूल्हे पर आने के बाद गर्म हुआ, वहाँ उन रजकणों का ही ऐसा स्वभाव है कि उनकी सदा एक अवस्थारूप स्थिति न रहे। इसलिये वे अपने स्वभाव से ही ठण्डी अवस्था को छोड़कर गर्म अवस्थारूप परिणमित हुये हैं; इसप्रकार स्वभाव को न देखकर अज्ञानी संयोग को देखता है कि - अग्नि के आने से पानी गर्म हुआ।

आचार्यदेव ने चार बोलों से स्वतंत्र वस्तुस्वरूप समझाया है, उसे समझ ले तो कहीं भ्रम न रहे। एक समय में तीन काल-तीन लोक को जानने वाले सर्वज्ञ परमात्मा वीतराग तीर्थकरदेव की दिव्यध्वनि में आया हुआ यह तत्त्व है और सन्तों ने इसे प्रगट किया है।

बर्फ के संयोग से पानी ठंडा हुआ और अग्नि के संयोग से पानी गर्म हुआ - ऐसा अज्ञानी देखता है; परन्तु पानी के रजकणों में ही ठंडा-गर्म अवस्थारूप परिणमित होने का स्वभाव है; उसे अज्ञानी नहीं देखता।

भाई! वस्तु का स्वरूप ऐसा ही है कि अवस्था की स्थिति एकरूप न रहे। वस्तु कूटस्थ नहीं है; परन्तु बहते हुये पानी की भाँति द्रवित होती है - पर्याय को प्रवाहित करती है, उस पर्याय का प्रवाह वस्तु में से आता है, संयोग में से नहीं आता।

भिन्न प्रकार के संयोग के कारण अवस्था की भिन्नता हुई अथवा संयोग बदले, इसलिये अवस्था बदल गई - ऐसा भ्रम अज्ञानी को होता है; परन्तु वस्तुस्वरूप ऐसा नहीं है। यहाँ चार बोलों द्वारा वस्तु का स्वरूप एकदम स्पष्ट किया है।

(१) परिणाम ही कर्म है। (२) परिणामी वस्तु के परिणाम हैं, अन्य

के नहीं। (३) वह परिणामरूपी कर्म, कर्ता के बिना नहीं होता। (४) वस्तु की स्थिति एकरूप नहीं रहती।

इसलिये वस्तु स्वयं ही अपने परिणामरूप कर्म का कर्ता है - यह सिद्धान्त है। इन चारों बोलों में तो बहुत रहस्य भर दिया है। उसका निर्णय करने से भेदज्ञान तथा द्रव्यसन्मुख दृष्टि से मोक्षमार्ग प्रगट होगा।

प्रश्न :- संयोग आये, तदनुसार अवस्था बदलती दिखाई देती है न?

उत्तर :- यह बराबर नहीं है; वस्तु के स्वभाव को देखने से ऐसा दिखाई नहीं देता। अवस्था बदलने का स्वभाव वस्तु का अपना है, ऐसा दिखाई देता है।

कर्म का मंद उदय हो, इसलिये मंद राग और तीव्र उदय हो, इसलिये तीव्र राग-ऐसा नहीं है, अवस्था एकरूप नहीं रहती, परन्तु अपनी योग्यता से मंद-तीव्ररूप से बदलती है - ऐसा स्वभाव, वस्तु का अपना है; वह कहीं पर के कारण नहीं है।

भगवान के निकट जाकर पूजा करे या शास्त्र श्रवण करे, उस समय अलग परिणाम होते हैं और घर पहुँचने पर अलग परिणाम हो जाते हैं तो क्या संयोग के कारण वे परिणाम बदले?

नहीं; वस्तु एकरूप न रहकर उसके परिणाम बदलते रहें - ऐसा ही उसका स्वभाव है; उन परिणामों का बदलना वस्तु के आश्रय से ही होता है; संयोग के आश्रय से नहीं। इसप्रकार वस्तु स्वयं अपने परिणाम का कर्ता है - यह निश्चित सिद्धान्त है।

इन चार बोलों के सिद्धान्तानुसार वस्तु-स्वरूप को समझे तो मिथ्यात्व की जड़ें उखड़ जायें और पराश्रितबुद्धि छूट जाये। ऐसे स्वभाव की प्रतीति होने से अखण्ड स्ववस्तु पर लक्ष जाता है और सम्यग्ज्ञान प्रगट होता है।

उस सम्यग्ज्ञान परिणाम का कर्ता, आत्मा स्वयं है। पहले अज्ञान परिणाम भी वस्तु के ही आश्रय से थे और अब ज्ञान परिणाम हुये, वे भी वस्तु के ही आश्रय से हैं।

मेरी पर्याय का कर्ता दूसरा कोई नहीं है, मेरा द्रव्य ही परिणमित होकर मेरी पर्याय का कर्ता होता है – ऐसा निश्चय करने से स्वद्रव्य पर लक्ष जाता है और भेदज्ञान तथा सम्यग्ज्ञान होता है।

अब, उस काल में कुछ चारित्रदोष से रागादि परिणाम रहे, वे भी अशुद्ध निश्चयनय से आत्मा का परिणमन होने से आत्मा का कार्य है – ऐसा धर्मी जीव जानता है; उसे जानने की अपेक्षा से व्यवहार को उस काल में जाना हुआ प्रयोजनवान कहा है।

धर्मी को द्रव्य का शुद्ध स्वभाव लक्ष में आ गया है; इसलिए सम्यक्त्वादि निर्मल कार्य होते हैं और जो राग शेष रहा है, उसे भी वे अपना परिणमन जानते हैं; परन्तु अब उसकी मुख्यता नहीं है, मुख्यता तो स्वभाव की हो गई है।

पहले अज्ञानदशा में मिथ्यात्वादि परिणाम थे, वे भी स्वद्रव्य के अशुद्ध उपादान के आश्रय से ही थे; परन्तु जब निश्चित किया कि मेरे परिणाम अपने द्रव्य के ही आश्रय से होते हैं, तब उस जीव को मिथ्यात्व परिणाम नहीं रहते, उसे तो सम्यक्त्वादिरूप परिणाम ही होते हैं।

अब, जो राग परिणमन साधक पर्याय में शेष रहा है, उसमें यद्यपि उसे एकत्वबुद्धि नहीं है; तथापि वह परिणमन अपना है – ऐसा वह जानता है। ऐसा व्यवहार का ज्ञान, उस काल का प्रयोजनवान है।

सम्यग्ज्ञान होता है तब निश्चय व्यवहार का स्वरूप यथार्थ ज्ञात होता है, तब द्रव्य-पर्याय का स्वरूप ज्ञात होता है, तब कर्ता-कर्म का स्वरूप ज्ञात होता है और स्वद्रव्य के लक्ष से मोक्षमार्गरूप कार्य प्रगट होता है; उसका कर्ता आत्मा स्वयं है।

इसप्रकार इस २११वें कलश में आचार्यदेव ने चार बोलों द्वारा स्पष्ट रूप से अलौकिक वस्तुस्वरूप समझाया है; उसका विवेचन पूर्ण हुआ।

॥इति स्वतंत्रता की घोषणा पूर्ण ॥

प्रस्तुत संस्करण की कीमत कम करनेवाले दातारों की सूची

१. श्रीमती पुष्पलता जैन ध.प. अजितकुमारजी जैन ५००.००
छिन्दवाड़ा